ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. No.- 88-90**

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-III, Issues-37, YEAR- July-Sept. 2025

कबीर के काव्य में सामाजिक चेतना का स्वर

मनीष कुमार, 2. प्रोफेसर श्रवण कुमार गुप्ता

शोध अध्येता, – हिंदी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
2. शोध निर्देशक – हिंदी विभाग, विद्यांत हिन्दू पी० जी० कॉलेज, लखनऊ (उ0प्र0) भारत

Received-15.08.2025, Revised-22.08.2025, Accepted-28.08.2025 **E-mail : maneeshk269@gmail.com**

सारांशः ***भक्ति काल के संत कवियों में कबीरदास का स्थान अद्वितीय है। वे ऐसे समय में प्रकट हुए जब भारतीय समाज धार्मिक अंधविश्वासों, सामाजिक विषमताओं और सांप्रदायिक संघर्षों से घिरा हुआ था। हिंदू समाज में मूर्तिपूजा, कर्मकांड और जातिगत भेदभाव गहराई से जमे हुए थे, वहीं मुस्लिम समाज में धर्मान्धता और बाह्याडंबर दिखाई देते थे। कबीर ने अपने काव्य के माध्यम से इन दोनों ही प्रवृत्तियों की तीखी आलोचना की। उन्होंने स्पष्ट कहा कि सच्चा धर्म बाहरी अनुष्ठानों में नहीं बल्कि प्रेम, सद्भावना और समानता में है। उनके दोहों में धार्मिक पाखंड का विरोध, सामाजिक समरसता की भावना, अहिंसा का समर्थन और मानवीय एकता की चेतना परिलक्षित होती है। कबीरदास ने जातिवाद और ऊँच–नीच की दीवारें तोड़ने का प्रयास किया तथा हिंदू–मुसलमान दोनों को समान दृष्टि से देखा। उनका काव्य समाज सुधार की लौ लेकर आया। वर्तमान समय में भी जब जातिगत और सांप्रदायिक तनाव विद्यमान हैं, कबीर की वाणी मार्गदर्शक सिद्ध होती है। इस प्रकार कबीर का काव्य केवल आध्यात्मिक साधना नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना का जीवंत दस्तावेज है।***

कुंजीभूत शब्द– **कबीरदास, निर्गुण भक्ति, सामाजिक चेतना, धार्मिक पाखंड, जातिवाद विरोध, अहिंसा, सामाजिक सुधार।**

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्ति आंदोलन का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह आंदोलन केवल साहित्यिक या धार्मिक नहीं था, बल्कि उस समय की सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का दर्पण था। भक्ति काल में जहाँ एक ओर रामानुज, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य जैसे आचार्यों ने अपने–अपने मतों का प्रतिपादन किया, वहीं संत कवियों ने समाज के भीतर गहराई से पैठे पाखंड, रूढ़ियों, छुआ–छूत और अंधविश्वासों को चुनौती दी। इन्हीं संत कवियों में कबीरदास का स्थान सबसे अलग और विशिष्ट है। कबीर का काव्य केवल भक्ति का नहीं है, बल्कि उसमें सामाजिक चेतना का एक प्रखर स्वर सुनाई देता है।

कबीर का जन्म ऐसे समय में हुआ जब भारत राजनीतिक अस्थिरता, धार्मिक संघर्ष और सामाजिक विषमताओं से गुजर रहा था। एक ओर मुस्लिम शासकों का प्रभुत्व बढ़ रहा था, जिससे हिंदू समाज का गौरव आहत हो रहा था, दूसरी ओर स्वयं हिंदू धर्म भीतर से खोखला हो चुका था। मूर्तिपूजा, कर्मकांड, जातिगत भेदभाव, ऊँच–नीच की दीवारें और छुआ–छूत जैसी कुरीतियाँ गहराई से जड़ें जमा चुकी थीं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उस युगीन परिस्थिति का वर्णन करते हुए कहा थाकृ "देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उसके देव मंदिर गिराए जाते थे, देव मूर्तियाँ तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन सकते थे।"[1] यह कथन स्पष्ट करता है कि उस समय भारतीय समाज एक गहरे अवसाद में था।

इसी निराशाजनक पृष्ठभूमि में कबीर का प्रादुर्भाव हुआ। वे न केवल भक्त कवि थे बल्कि समाज सुधारक भी थे। उन्होंने हिंदू और मुसलमान दोनों के बाह्य आडंबरों की आलोचना की और एक ऐसे समाज की कल्पना की जिसमें धर्म, जाति, संप्रदाय और ऊँच–नीच का कोई स्थान न हो। कबीर का यह स्वर उनके काव्य को सामान्य भक्ति साहित्य से अलग करता है।

कबीर के जन्म के संबंध में बहुत–सी किंवदंतियाँ प्रचलित हैं, जिसके कारण उनके जीवन का सही–सही विवरण प्राप्त करना कठिन है। सामान्यतः उनका जन्म संवत 1456 (ई. 1398) में माना जाता है। उनके जन्म स्थान के विषय में भी विभिन्न मत हैं। उनके जन्म के विषय में एक किंवदंती बहुत प्रसिद्ध मिलती है। कहा जाता है कि संत रामानंद ने भूलवश एक विधवा ब्राह्मणी को पुत्रवती होने का आशीर्वाद दे दिया, जिसके फलस्वरूप कबीर का जन्म हुआ। लोकलाज के भय से उस बालक को वह लहरतारा नामक ताल के पास फेंक आई। अली या नीरू नाम का जुलाहा उसे अपने घर उठा लाया और उसका लालन–पालन किया। कबीर का जीवन पूरी तरह साधारण था। वे पेशे से जुलाहा थे और काशी में रहते थे। परंतु उनके विचार और चिंतन असाधारण थे। । वे सामाजिक यथार्थ के कवि थे, जिन्होंने अपने समय के समस्याओं को अच्छी तरह से अनुभव किया और उनके समाधान का मार्ग खोजा।

कबीर के गुरु के विषय में भी भिन्न मत मिलते हैं। किंतु सामान्यतः यह स्वीकार किया जाता है कि वे रामानंद के शिष्य थे। हालाँकि कबीर के राम, रामानंद के राम से भिन्न थे। रामानंद जहाँ दशरथ के पुत्र राम को मानते थे, वहीं कबीर के राम निर्गुण ब्रह्म थे। कबीर कहते हैं :

"दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना।
राम नाम का मरम है आना।।"[2]

यहाँ उनका संकेत स्पष्ट है कि सच्चा ईश्वर किसी रूप–विशेष में बंधा हुआ नहीं है, वह निर्गुण है और सर्वव्यापी है। कबीर का व्यक्तित्व बहुआयामी था। वे अक्खड़ थे, फक्कड़ थे, सीधे–सपाट और निडर थे। वे किसी भी सत्ता, परंपरा या पाखंड से समझौता करने वाले नहीं थे। उनकी वाणी तीखी थी, परंतु उसके पीछे समाज और मानवता के प्रति गहरी करुणा छिपी रहती थी। वे ढोंगियों और पाखंडियों को कटु वचन सुनाते थे, लेकिन साधारण जनता के लिए वे करुणा और प्रेम के प्रतीक थे। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उनके व्यक्तित्व को इन शब्दों में चित्रित किया हैकृ"ऐसे थे कबीर। सिर से पैर तक मस्त–मौलाय स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़य भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के आगे प्रचंडय दिल के साफ, दिमाग के दुरुस्तय भीतर से कोमल, बाहर से कठोरय जन्म से अस्पृश्य, कर्म से बंदनीय।"[3] यह कथन कबीर की संपूर्ण छवि प्रस्तुत करता है।

उनके जीवन के अंतिम समय के संबंध में भी कई किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि जब उनका निधन हुआ तो उनके शव के स्थान पर केवल कुछ फूल का मिले। हिंदू और मुसलमान दोनों ने उन फूलों को बाँट लिया और अपने–अपने ढंग से

अनुरूपी लेखक/ संयुक्त लेखक

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-III, Issues-37, YEAR- July-Sept. 2025

अंतिम संस्कार किया। यह घटना प्रतीक है कि कबीर को हिंदू और मुसलमान दोनों ही अपना मानते थे, और साथ ही यह भी कि कबीर का स्थान किसी एक धर्म में सीमित नहीं था।

कबीर का जीवन और काव्य इस तथ्य को सिद्ध करता है कि वे न केवल संत कवि थे बल्कि समाज सुधारक भी थे। वे समाज की विसंगतियों को बारीकी से पहचानते थे और उन्हें दूर करने का साहस रखते थे। उन्होंने न केवल अपने समय के हिंदू समाज को चुनौती दी, बल्कि मुस्लिम समाज की कुरितियों पर भी प्रहार किया। इस प्रकार उनका जीवन और व्यक्तित्व सामाजिक चेतना के अद्वितीय स्रोत हैं।

कबीरदास की वाणी में केवल भक्ति का स्वर ही नहीं मिलता बल्कि उसमें उस समय के समाज की वास्तविक स्थितियों का गहन चित्रण और सुधार की प्रबल चेतना भी दिखाई देती है। उनका काव्य धार्मिक पाखंड, जातिगत विषमताओं, ऊँच–नीच की दीवारों और सांप्रदायिक संकीर्णताओं पर तीखा प्रहार करता है। कबीर न तो किसी संप्रदाय विशेष के कवि थे, न किसी एक धर्म के प्रचारक। वे सार्वभौमिक दृष्टि के साधक थे और उनकी वाणी हर उस स्थिति के खिलाफ विद्रोह है, जहाँ मनुष्य–मनुष्य के बीच भेदभाव किया जाता है।

कबीर ने सबसे पहले हिंदू और मुसलमान दोनों ही समाजों में प्रचलित पाखंडों को कटघरे में खड़ा किया। एक ओर हिंदू समाज मूर्तिपूजा, कर्मकांड, व्रत, उपवास और शास्त्राधारित आडंबरों में उलझा हुआ था, तो दूसरी ओर मुसलमान समाज मस्जिद, रोजा, नमाज और पशु हत्या जैसे आडंबरों में डूबा था। कबीर ने दोनों को ही कठोर शब्दों में फटकार लगाई। वे मानते थे कि सच्चा धर्म इन बाहरी आडंबर में नहीं बल्कि मन की शुद्धता में है। वे कहते हैं :

"पाथर पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार।
घर की चाकी कोउ न पूजै, जा पीसा खाए संसार।।"[4]

यह दोहा स्पष्ट करता है कि कबीर मूर्तिपूजा को निरर्थक मानते हैं और जीवनोपयोगी साधनों को ही अधिक मूल्यवान मानते हैं। इसी प्रकार उन्होंने मुसलमानों की धार्मिक प्रथाओं पर व्यंग्य करते हुए कहा :

"कांकर पाथर जोरि के, मस्जिद लई बनाए।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय।।"[5]

यहाँ कबीर प्रश्न करते हैं कि यदि ईश्वर सर्वशक्तिमान है, तो क्या उसे सुनने के लिए ऊँची आवाज की जरूरत है? इसी तरह रोजा और बलि पर चोट करते हुए उन्होंने कहा :

"दिन भर रोजा राहत हैं, राति हनत हैं गाय।
यह तो खून वह बंदगी, कैसे खुशी खुदाय।।"[6]

कबीर की दृष्टि में ऐसा धर्म निरर्थक है जो हिंसा के सहारे खड़ा हो। उनकी वाणी का सबसे क्रांतिकारी पहलू जातिवाद और ऊँच–नीच की व्यवस्था पर प्रहार है। मध्यकालीन समाज जातीय बंधनों से जकड़ा हुआ था। ऊँच–नीच, छुआछूत और अस्पृश्यता ने समाज को खंडित कर दिया था। कबीर ने इन दीवारों को तोड़ने का प्रयास किया। वे कहते हैं :

"एक बूंद एक मल मूतर एक चाम एक गूदा।
एक जाति थै सब उपजा कौन ब्राह्मण कौन सुधा।।"[7]

कबीर का तर्क स्पष्ट है कि सभी मनुष्य एक ही स्रोत से उत्पन्न हुए हैं। यदि जन्म से ही श्रेष्ठता तय होती तो शारीरिक संरचना में भिन्नता दिखाई देती, पर ऐसा नहीं है। वे आगे चुनौती देते हैं :

"जो तूं बांभन बंभनी जाया। तौ आन बाट ह्वै क्यों नहिं आया।
जो तूं तुरक तुरकनी जाया। तौ भीतर खतना क्यों न कराया।।"[8]

यह दोहा जाति और धर्म की निरर्थकता को उजागर करता है। कबीर का मानना था कि मनुष्य का मूल्य जन्म से नहीं बल्कि कर्म और आचरण से निर्धारित होना चाहिए।

कबीर ने केवल नकारात्मक आलोचना ही नहीं की, बल्कि उन्होंने सकारात्मक रूप में प्रेम और करुणा का मार्ग भी प्रस्तुत किया। उनके लिए प्रेम ही वास्तविक धर्म था। वे मानते थे कि पोथियों और शास्त्रों का अध्ययन तभी सार्थक है जब उसमें प्रेम और व्यवहारिकता हो। अन्यथा सारा ज्ञान व्यर्थ है। उन्होंने कहा :

"पोथी पढ़ि–पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय।।"[9]

कबीर ने ज्ञान को व्यवहार से जोड़ा। उनके लिए प्रेम का अर्थ केवल सांसारिक आकर्षण नहीं था, बल्कि वह करुणा और सह–अस्तित्व का भाव था, जो समाज को जोड़ने में सहायक हो।

उनके काव्य में दया और अहिंसा की चेतना भी अच्छी तरह प्रकट होती है। पशुबलि और हिंसा के नाम पर किए जाने वाले धार्मिक कर्मकांडों को उन्होंने खुलकर चुनौती दी। वे कहते हैं :

"बकरी पाती खाति है ताको काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात है तिनका कौन हवाल।।"[10]

यहाँ कबीर का संकेत है कि जो लोग निर्दोष पशुओं की हत्या करते हैं तथा उनको मारकर खाते हैं, वे वास्तव में ईश्वर की दृष्टि में सबसे बड़े पापी हैं। इस प्रकार कबीर ने अहिंसा और जीवन के प्रति सम्मान को धर्म का मूल तत्व माना।

कबीर की वाणी में धार्मिक सहिष्णुता और सार्वभौमिकता की भावना भी मिलती है। उन्होंने राम और रहीम, हरि और अल्लाह, सबको एक ही सत्य के भिन्न रूप माना। वे कहते हैं :

"हमारे राम–रहीम–करीमा, कैसौ अलह–राम सती सोई।
बिसमिल मेटि बिसभर एकै, और न दूजा कोई।।"[11]

यह दृष्टिकोण बताता है कि कबीर किसी विशेष संप्रदाय के प्रवक्ता नहीं थे। वे उस सार्वभौमिक चेतना के साधक थे, जो समस्त मानवता को एक सूत्र में बाँधती है।

उनकी भाषा और शैली भी उनकी सामाजिक चेतना को जन–जन तक पहुँचाने में सहायक बनी। उन्होंने अपने उपदेश जो मुख्यतः 'साखी' के भीतर दोहों में है सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग किया। सधुक्कड़ी अर्थात राजस्थानी, पंजाबी मिली खड़ी बोली । इसके

अतरिक्त उनकी भाषा में हिंदी, अवधी, भोजपुरी, ब्रज और फारसी के शब्दों का मिश्रण भी मिलते हैं, जिस कारण इनकी भाषा को पंचमेल खिचड़ी भी कहा जाता है। "भाषा बहुत परिष्कृत और परिमार्जित ना होने पर भी कबीर की उक्तियों में कहीं–कहीं विलक्षण प्रभाव और चमत्कार है। प्रतिभा उनमें बड़ी प्रकार थी इसमें संदेह नहीं।"[12] उनके मुंह से बड़ी चुटकीली और व्यंग्य–चमत्कारपूर्ण बातें निकलती थीं। कबीर शास्त्र और किताबों के ज्ञान को व्यर्थ मानते हैं। उनका विश्वास है कि यह केवल मनुष्य को उलझाते हैं। वे प्रत्यक्ष अनुभव को ही सत्य मानते हैं। इसी विचार को वे स्पष्ट करते हुए कहते हैं :

"मेरा तेरा मनुआ कैसे इक होइ रे!
मैं कहता हौं आँखिन देखी,
तू कहता कागद की लेखी।"[13]

यहाँ कबीर ज्ञान की वास्तविकता पर प्रश्न उठाते हैं। उनके लिए अनुभवजन्य ज्ञान ही सच्चा हैं। पुस्तकीय ज्ञान केवल शब्दों का बोझ हैं।

कबीर की वाणी केवल समाज की आलोचना तक सीमित नहीं थी, बल्कि उसमें एक नया समाज रचने की आकांक्षा भी थी। वे ऐसे समाज का स्वप्न देखते थे, जहाँ धर्म, जाति और संप्रदाय के नाम पर कोई विभाजन न हो, जहाँ सब मनुष्य समान हों और एक–दूसरे से प्रेम और भाईचारे के साथ रहें। उनकी वाणी का एक विषेश पहलू यह हैं। कि उसमें निडरता और निश्कपटता ळें कबीर किसी से नहीं डरते। न वे पंडितों से भयभीत होते हैं, न मुल्लाओं से। वे स्तय को सीधे और सपाट रूप में कहते हैं। यही कारण हैं कि उनकी वाणी में एक अलग प्रकार की ऊर्जा और तेजस्विता दिखाई देती हैं।

आज जब हम उनके काव्य को देखते हैं, तो उसमें न केवल मध्यकालीन समाज की तस्वीर मिलती हैं, बल्कि वर्तमान समय की समस्याओं का समाधान भी दिखाई देता जातिवाद, सांप्रदायिकता और पाखंड आज भी समाज को विभाजित कर रहे हैं। ऐसे समय में कबीर की वाणी हमें प्रेम, सहानुभूति, समानता और मानवता की राह दिखाती हैं, यही उनकी सामाजिक चेतना की वास्तविकता हैं।

निष्कर्ष – कबीर के काव्य में सामाजिक चेतना का प्रखर रूप मिलता है। उन्होंने धार्मिक रूढ़ियों, सामाजिक कुरीतियों, जातिगत भेदभाव और हिंसा पर करारा प्रहार किया। उनके लिए सच्चा धर्म प्रेम, भाईचारे और समानता में था। वे न हिंदू थे, न मुसलमानय न योगी थे, न वैष्णव बल्कि वे मानवता के साधक थे। उनके काव्य में समाज को जोड़ने और एक नई दिशा देने की क्षमता है। यही कारण है कि उनका काव्य आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना उनके समय में था। आज जब समाज फिर से विभाजित और तनावग्रस्त दिखाई देता है, कबीर की वाणी हमें याद दिलाती है कि सच्चा धर्म प्रेम और एकता में है, न कि बाह्य आडंबरों में। अतः यह कहना उचित होगा कि कबीर के काव्य में सामाजिक चेतना भारतीय समाज के लिए मार्गदर्शक है और उनके विचार आज भी हमें सही दिशा दिखाने में सक्षम हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, प्रयाग पुस्तक सदन इलाहाबाद, संस्करणः 2017, पृष्ठ संख्या–35
2. वही पृष्ठ संख्या–45
3. कबीर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, उनतीसवां छात्र संस्करणः 2023, पृष्ठ संख्या– 134
4. कबीर ग्रंथावली, श्यामसुंदर दास
5. बीजक पृष्ठ संख्या– 388
6. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, प्रयाग पुस्तक सदन इलाहाबाद, संस्करणः 2017, पृष्ठ संख्या–35
7. कबीर ग्रंथावली, श्यामसुंदर दास, लोकभारती प्रकाशन प्रयागराज, नवम संस्करणः 2022, पृष्ठ संख्या– 35
8. वही
9. कबीर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, उनतीसवां छात्र संस्करणः 2023, पृष्ठ संख्या– 145
10. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, प्रयाग पुस्तक सदन इलाहाबाद, संस्करणः 2017, पृष्ठ संख्या–46
11. कबीर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, उनतीसवां छात्र संस्करणः 2023, पृष्ठ संख्या– 145
12. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, प्रयाग पुस्तक सदन इलाहाबाद, संस्करणः 2017, पृष्ठ संख्या–47
13. कबीर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, उनतीसवां छात्र संस्करणः 2023, पृष्ठ संख्या– 134

*****